सोङ्गिया (बुल्गारिया)
जून ३०, १९९९

सन्देश संख्या १०

सत्संग

'सत्संग' का अन्तर्निहित अर्थ है – एकत्रित होकर ऐसे संलाप की शुरूआत करना जिसके द्वारा मन की प्रवृत्तियों से सम्बन्धित सत्य धीरे–धीरे उद्घाटित होता है, यद्यपि 'सत्संग' शब्द का सामान्य अर्थ ऐसा किया जाता है कि साधारण बुद्धि के लोग एकत्र होकर प्रार्थना, भजन एवं कीर्तन के माध्यम से मनोरंजन में डूबे रहें अथवा मान्य सिद्धान्तों एवं विश्वासों में लिप्त होकर उत्तेजना में फँसे रहें। साधारण बुद्धि का अर्थ है – सूचनाओं/किताबी ज्ञान से बोझिल एक मदमत्त जड़ मस्तिष्क। किन्तु, सत्संग प्रज्ञायुक्त एवं स्वतंत्र मस्तिष्क से उच्चकोटि के चिन्तन की अपेक्षा करता है।

सत्संग में संभाषण विचार–संप्रेषण का एक प्रकार है जिसमें प्रश्नोत्तर तब तक जारी रहता है जब तक कि एक बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न अनुत्तरित रह जाये। यही है प्रबोध में प्रकाश का उदय।

दुर्भाग्य से आपके प्रश्न, उत्तरों के केवल उसी क्षेत्र से उत्पन्न होते हैं जो कि पहले से ही आपको आपके बोझिल अनुबन्धन के माध्यम से ज्ञात हैं। आप प्रश्न केवल अपने ''उत्तरों'' के दृढ़ीकरण के लिए ही करते हैं। यह पुनः और अधिक अनुबंधन में लिप्त करता है और आपको स्नायविक रोगी बना देता है। किन्तु, जब एक गंभीर प्रश्न स्थगित रह जाता है तब एक वास्तविक चमत्कार (दैवीय ध्वनि, दिव्य–दर्शन, सुगन्धित संत इत्यादि नहीं) घटित होता है क्योंकि प्रश्न विचारों के चक्र से पूर्णतः अनछुआ रह जाता है, जैसे एक कली को पूर्णतया खिलने के लिए बिना छुये छोड़ देते हैं। तब प्रश्न पिघलकर स्वयम् उत्तर बन जाता है तथा प्रश्न और उत्तर का विभेद लुप्त हो जाता है क्योंकि प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता के अंदर अहम् द्वारा निर्मित विभाजन समाप्त हो जाता है। इस प्रकार एक अप्रमेय व अनाममय प्रक्रिया का आरम्भ होता है।

समस्या–समाधान की इस ''विधि–विहीन'' विधि का प्रयोग करें तथा ''निर्मनावस्था'' के परमानन्द एवं मंगलमय अवस्था में प्रवेश करें।